संविधान संवाद शृंखला – 11

भारतीय संविधान और रियासतें

विकास संवाद

शीर्षक
भारतीय संविधान और रियासतें
(संविधान संवाद शृंखला - 11)

लेखक
सचिन कुमार जैन

संपादन
पूजा सिंह

संपादन सहयोग
राकेश कुमार मालवीय, रंजीत अभिज्ञान, पंकज शुक्ला

संस्करण - प्रथम

वर्ष - 2023

प्रतियां - 1000

सहयोग राशि
छात्रों के लिए - ₹ 20
नागरिकों के लिए - ₹ 25
संस्थाओं के लिए - ₹ 30

मुद्रक - अमित प्रकाशन

सज्जा - अमित सक्सेना

प्रकाशक
विकास संवाद
ए-5, आयकर कॉलोनी, जी-3, गुलमोहर कॉलोनी,
बावड़िया कलां, भोपाल (म.प्र.) - 462039. फोन : 0755-4252789
ई-मेल : office@vssmp.org / www.vssmp.org
www.samvidhansamvad.org

भारतीय संविधान और रियासतें

भारत हमेशा से विविधताओं से परिपूर्ण देश रहा है। आज़ादी के पहले यहां अनेक राज्य और रियासतें मौजूद थीं। 600 से अधिक इन छोटी-बड़ी रियासतों की अपनी-अपनी अलग पहचान थी। इनकी भौगोलिक सीमाएं अलग थीं, नीतियां अलग थीं, राज्य व्यवस्थाएं अलग थीं और इनकी भाषा और अर्थव्यवस्था भी अलग-अलग थीं।

यह भी सच है कि स्वतंत्रता के समय सभी रियासतें भारत में विलीन होना नहीं चाहती थीं। इसके लिए नये स्वतंत्र हुए देश को तमाम तरीके अपनाने पड़े। आज़ादी के उस दौर में रियासतें एक समांतर सच्चाई थीं। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष और पाकिस्तान के निर्माण की चर्चा के बीच कई रियासतें अपनी आज़ादी का स्वप्न भी देख रही थीं। रियासतें और उनका भारत में विलय एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम है जिस पर विस्तार से दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

रियासतें : ऐतिहासिक संदर्भ

स्वतंत्रता के पूर्व के भारत की बात करें तो रियासतें भारत की पहचान, उसके औपनिवेशिक काल, स्वतंत्रता संघर्ष और संवैधानिक प्रक्रिया का अहम हिस्सा रही हैं। भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया में रियासतों का विलय एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

भारत में सामाजिक बदलाव की हलचल और ब्रिटिश उपनिवेश से स्वतंत्र होने की छटपटाहट 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आरंभ हुई। इस आसन्न खतरे को देखते हुए ही ब्रिटिश सरकार ने बंगाल विभाजन और सांप्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचन की व्यवस्था बनायी लेकिन भारतीय रियासतों की भूमिका बहुत पहले तय हो चुकी थी। सन 1857 के पहले स्वतंत्रता आंदोलन में कई रियासतों ने ब्रिटिशों के खिलाफ विद्रोह को कुचलने में साम्राज्य का साथ दिया था।

रियासतें : परिभाषा और तत्कालीन स्थिति

भारत सरकार अधिनियम की धारा 311 के उपभाग एक के अनुसार, 'भारतीय राज्य/रियासत से आशय ऐसे क्षेत्र/भूभाग (टेरिटरी) से है, जिसे राज्य, रियासत, जागीर या किसी अन्य रूप में, जो किसी शासक के आधिपत्य में है, और जो ब्रिटिश सम्राट के अधीन है लेकिन ब्रिटिश भारत का भाग नहीं है।' राजनीति की भाषा में कहा जाए तो भारत का ऐसा राजनीतिक क्षेत्र, जिसके भूभाग पर किसी शासक का नियंत्रण है और वह उस क्षेत्र/राज्य की आंतरिक व्यवस्था का प्रबंधन करने के लिए स्वतंत्र है। इन शासकों को ब्रिटिश सम्राट की सरकार पूर्ण मान्यता देती थी।

भारत पर शासन करने के लिए ब्रिटिश सम्राट की सरकार ने रियासतों से सहायक संधि की नीति अपनाई थी। यह ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा अपनाई जाने

वाली नीतियों का एक हिस्सा भर थी। अठारहवीं सदी के अंत में लार्ड वेलेजली (जो वर्ष 1798 में गवर्नर जनरल बन कर आये थे) ने राज्यों/रियासतों के साथ 'सहायक संधि' की व्यवस्था शुरू की थी। हालांकि इस नीति का निर्माण उनसे पहले फ्रांसीसी गवर्नर जनरल डुप्ले ने किया था। लार्ड वेलेजली के पहले ईस्ट इंडिया कंपनी राज्यों और रियासतों के साथ समानता के संबंध रखती थी और उनकी व्यवस्थाओं में कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी। लार्ड वेलेजली ने इस नीति को बदल दिया। ब्रिटिश कंपनी की ताकत बढ़ रही थी लेकिन भारत में कोई भी रियासत बहुत शक्तिशाली नहीं थी, इसलिए लार्ड वेलेजली ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में और ज्यादा शक्तिशाली बनाने के लिए नीति में बदलाव किया। इसी नीति का हिस्सा थी सहायक संधि प्रणाली।

सहायक संधि प्रणाली

इस नीति के अंतर्गत जो भी रियासत ईस्ट इंडिया कंपनी से सहायक संधि करती, उसे रियासत में सुरक्षा, सहायता और व्यवस्था बनाये रखने के लिए ब्रिटिश फौज/ब्रिटिश रेजिमेंट रखनी होती थी। इस फौज का खर्च रियासत वहन करती थी। इसके लिए रियासत एक निश्चित राशि ईस्ट इंडिया कंपनी को देती थी या फिर रियासत का कोई हिस्सा कंपनी के सुपुर्द करना होता था।

सहायक संधि प्रणाली के अंतर्गत रियासत को किसी विदेशी शासन व्यवस्था या फिर दूसरी रियासत के साथ भी कोई संधि करने या संबंध रखने की अनुमति नहीं थी। ऐसे किसी भी संबंध या संधि के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी की मध्यस्थता जरूरी थी। इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि रियासतें अंग्रेजों के अलावा अन्य विदेशियों, जैसे डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी व्यक्तियों और उनके प्रतिष्ठानों को बाहर निकालें। ऐसी संधि के बदले में ब्रिटिश कंपनी रियासतों को बाहरी आक्रमण और आंतरिक टकरावों–समस्या की स्थिति में सुरक्षा प्रदान करने का वादा करती थी। लेकिन हकीकत में सहायता संधि स्वीकार करने वाली रियासतों के साथ अधीनता का व्यवहार किया जाता था।

हैदराबाद के निजाम ने सबसे पहले वर्ष 1798 में ब्रिटिश कंपनी के साथ सहायक संधि को स्वीकार किया। इसके बाद मैसूर (वर्ष 1799), तंजौर (वर्ष 1799), अवध (वर्ष 1801), पेशवा (वर्ष 1802), सिंधिया (वर्ष 1804) ने ब्रिटिश कंपनी के साथ सहायक संधि की। सबसे पहले समानता या समान संघ नीति अपनाई गयी, फिर सहायक संधि की नीति अपनाई गयी। इसके बाद ब्रिटिश कंपनी ने रियासतों को अपनी शासन व्यवस्था में विलय कराने की नीति अपना ली।

इस नीति में कोई भी शासक सीधे अपने उत्तराधिकारी को शासन नहीं सौंप सकता था। इसके लिए ब्रिटिश कंपनी से अनुमति लेना आवश्यक कर दिया गया। इस व्यवस्था में अगर किसी रियासत के शासक का कोई जीवित उत्तराधिकारी नहीं होता, तो उसका ब्रिटिश राज में विलय करा दिया जाता था। इस तरह वर्ष 1848 में सतारा, वर्ष 1849 में जैतपुर, संभलपुर, बुंदेलखंड और उड़ीसा, वर्ष 1850 बघात, वर्ष 1852 में उदयपुर, वर्ष 1853 में झांसी, वर्ष 1954 में नागपुर और वर्ष 1856 में अवध रियासत को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। इस आक्रामक नीति ने रियासतों की स्वतंत्रता और अस्मिता को लगभग समाप्त कर दिया।

जब 1857 में स्वतंत्रता के समय ब्रिटेन को यह अहसास हुआ कि यदि भारत में साम्राज्य बनाये रखना है तो रियासतों को अपने साथ रखना जरूरी है। वर्ष 1858 में भारत की शासन व्यवस्था ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण से निकल कर सीधे ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आ गयी। इसके बाद ब्रिटेन साम्राज्य ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश भारत में रियासतों का विलय नहीं किया जाएगा। एक नवंबर 1858 को लार्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया द्वारा राजकुमारों, राजप्रमुखों और भारत के नागरिकों के नाम की गई घोषणा को जारी किया। इसमें स्थानीय रियासतों और राज प्रमुखों को हर तरह की सहायता देने और ब्रिटिश भारत में उनका विलय न करने की नीति का उल्लेख था। धार्मिक मसलों–व्यवहारों और आस्थाओं के विषयों में कोई दखल न देने की बात भी शामिल थी (ब्रिटानिका)।

रियासतों के शासकों को अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार पुन: दे दिया गया। ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री बेंजामिन डिजायरली के प्रोत्साहन देने पर वर्ष 1876 में भारत की रियासतों (देसी रियासतों) पर ब्रिटिश साम्राज्य की सर्वोच्चता को वैधानिक रूप दे दिया गया और ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी भी घोषित कर दिया गया।

भारत सरकार ने जुलाई 1948 में रियासतों की स्थिति पर एक श्वेत पत्र जारी किया था। दरअसल जब रियासतों के भारत में विलय की प्रक्रिया संचालित हो रही थी, तब यह बहुत जरूरी था कि रियासतों से संबंधित प्रश्न को वृहद भारत के ऐतिहासिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि में अच्छे से जाना-समझा जाए। यह श्वेत पत्र इसी उद्देश्य से जारी किया गया था।

यह पत्र तत्कालीन भारत की भौगोलिक और राजनीतिक स्थिति का तथ्यात्मक चित्रण करता है। पांच जुलाई 1947 को भारत सरकार के 'राज्य विभाग' की स्थापना की गयी थी। कैबिनेट मिशन योजना, अंतरिम सरकार और संविधान सभा के गठन के बाद अंतत: यह तय हो गया कि भारत का विभाजन होगा।

तब दूसरी चुनौती यह थी कि भारत में मौजूद रियासती राज्यों का स्वरूप क्या होगा? क्या वे स्वतंत्र भारत का हिस्सा बनेंगे? या वे स्वतंत्रता के विकल्प की तरफ बढ़ेंगे? या उनका झुकाव पाकिस्तान में विलय के विकल्प की तरफ होगा? इन्हीं सवालों के साये में भारत में रियासतों के विलय की राजनीतिक प्रक्रिया संचालित की गयी थी।

रियासतें : उत्तराधिकार और ब्रिटिश शासन

ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायी बनाने के लिए लॉर्ड कैनिंग ने एक नवंबर 1858 को 'भारत के राज प्रमुखों, राजाओं और लोगों' के लिए महारानी विक्टोरिया की घोषणा प्रस्तुत की। इसमें कहा गया था कि ब्रिटिश भारत में स्थानीय रियासतों के

राजाओं-राजकुमारों को स्थायी समर्थन दिया जाएगा और धार्मिक विश्वासों और धार्मिक पद्धतियों में कोई दखल नहीं दिया जाएगा।

यह घोषणा महत्वपूर्ण थी क्योंकि इसने लॉर्ड डलहौजी की वर्ष 1857 से पहले की उस नीति को उलट दिया, जिसमें रियासतों के विलय के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया जा रहा था। इस घोषणा में राजाओं-रियासत प्रमुखों को अपना उत्तराधिकारी चुनने की स्वतंत्रता दी गयी, बशर्ते कि वे ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा रखने की शपथ लें। वर्ष 1884 में ब्रिटिश साम्राज्य ने भारतीय राज्यों-रियासतों के उत्तराधिकारियों के चयन में एक बार फिर दखल दिया। अब कहा गया कि 'स्थानीय रियासत के उत्तराधिकारी का चयन तब तक वैधानिक नहीं है, जब तक कि उस नियुक्ति के लिए ब्रिटिश प्राधिकारी की सहमति न ली जाए।'

पारंपरिक व्यवस्था में यह बदलाव आने लगा कि राज प्रमुख अपने उत्तराधिकारी का चुनाव अधिकार के साथ नहीं, बल्कि ब्रिटिश राज की सहमति से करते थे। भारतीय रियासतों और ब्रिटिश साम्राज्य के बीच तल्खी की शुरुआत यहीं से हुई।

रियासतें : ब्रिटिश राज की मददगार

पहले विश्व युद्ध में ब्रिटिश भारत (जिसमें कई रियासतें शामिल थीं) ने 14.62 करोड़ पाउंड (वर्तमान मूल्य 15 अरब रुपये से अधिक) खर्च किए थे। इतना ही नहीं 14 लाख सैनिक, 1.85 लाख घोड़े, खच्चर, दुधारू पशु भी ब्रिटेन के

सहयोगी देशों को भेजे गये थे। 'इंडिया एंड द फर्स्ट वर्ल्ड वार' के लेखक बुधेस्वर पती के मुताबिक़ उस युद्ध में हैदराबाद के नवाब मीर उस्मान अली खान बहादुर ने आर्थिक सहायता, प्रतिबद्धता, राहत और युद्ध क़र्ज़ के रूप में ब्रिटिश भारत की सरकार को 3.8 करोड़ रुपये की सीधी मदद की थी। जबकि मैसूर के महाराजा सर कृष्ण राजा वाडियार बहादुर ने ब्रिटिश सरकार को 2.20 करोड़ रुपये की मदद के साथ अपनी सेना, बंदूकें बनाने के लिए 1.50 लाख फुट रोजवुड और मेसोपोटामिया में रेल पथ बनाने के लिए 30 हज़ार मीटर सागौन की लकड़ी दी थी।

भारत सरकार अधिनियम

ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत में उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित करने के तर्क के आधार पर भारत सरकार अधिनियम, 1919 लागू किया था। परंतु इस अधिनियम में बहुत कम भारतीयों को मताधिकार दिया गया और गवर्नर जनरल को लगभग असीमित अधिकार दिए गये। भारतीय, वर्ष 1919 के क़ानून से असंतुष्ट थे। इसकी समीक्षा के लिए सर जान साइमन के नेतृत्व में यह जांचने के लिए भारतीय सांविधिक आयोग गठित किया गया कि भारतीय, जिम्मेदार शासन व्यवस्था में ज्यादा जिम्मेदारी लेने के लिए सक्षम हैं या नहीं? इस आयोग के सदस्यों में एक भी भारतीय नहीं था। 11 दिसंबर 1927 को इलाहाबाद में आयोजित हुई सर्वदलीय बैठक में इस आयोग के स्वरूप की निंदा करते हुए उसे खारिज किया गया। बैठक में कहा गया कि 'यह न केवल भारतीयों का अपमान करने की सुविचारित कोशिश है, बल्कि अपने ही देश के लिए संविधान बनाने की प्रक्रिया में सहभागिता के अधिकार के नकारने की कोशिश भी है।'

लॉर्ड लिनलिथगो के नेतृत्व में बनी संयुक्त चयन समिति की रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार अधिनियम, 1935 तैयार किया गया और वर्ष 1937 में उसे लागू किया गया। इसके साथ ही पहली बार भारत को 'भारतीय संघ' (फेडरेशन ऑफ इंडिया) का रूप देने की कानूनी घोषणा हुई। इस अधिनियम का मकसद ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा पारंपरिक शासन व्यवस्था को बनाये रखने में रूचि रखने वाली ताकतों, मुख्य रूप से रियासतों और राज्यों को विशेष संरक्षण देने और साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था बना कर मुसलामानों को अपने साथ लेने की कोशिश करने का था।

अधिनियम में कहा गया कि राज्य भारतीय संघ में तभी शामिल माने जायेंगे, जब रियासत के राजा / प्रमुख ब्रिटेन के महामहिम सम्राट के साथ 'अधिमिलन / अंगीकार पत्र' (इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन) पर हस्ताक्षर करेंगे। इस अंगीकार पत्र में इन शर्तों का उल्लेख होगा कि रियासत / राज्य का राजा / प्रमुख ब्रिटिश सम्राट, गवर्नर जनरल, संघीय विधायिका, संघीय न्यायालय या अन्य किसी संघीय अभिकरण को अपने राज्य में इस क़ानून के तहत दी गयी शक्तियों को लागू करने की सहमति देते हैं। इसमें शर्त थी कि ब्रिटिश सम्राट किसी पूरक अंगीकार पत्र या शर्त को मानने के लिए बाध्य नहीं होंगे। पत्र को ब्रिटिश सम्राट की सहमति मिल जाने के बाद अंगीकार पत्र की वैधता को चुनौती नहीं दी जा सकेगी।

इस अधिनियम के अनुसार भारतीय संघ के दो सदन बनाना तय किया गया। राज्य परिषद ब्रिटिश भारत के 156 प्रतिनिधि और राज्यों/रियासतों के 104 प्रतिनिधि होंगे। इसी तरह संघीय विधान परिषद में ब्रिटिश भारत के 250 और राज्यों/रियासतों के 125 प्रतिनिधि होने की व्यवस्था बनायी गयी। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों को चुनाव के माध्यम से सदन में आना था, जबकि रियासतों के प्रमुखों को अपने प्रतिनिधि नामित करने थे। दरअसल ब्रिटिश सरकार यह सुनिश्चित कर रही थी कि इन सदनों में कभी भी किसी एक दल, खासकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का बहुमत न हो पाये।

इस व्यवस्था के आधार पर वर्ष 1937 में भारत के 11 प्रांतों में चुनाव हुए। फ़रवरी 1937 में आये परिणामों के अनुसार कांग्रेस ने आठ प्रांतों में सत्ता हासिल की। कांग्रेस 1935 के अधिनयम से आक्रोशित थी और अगस्त–सितम्बर 1937 में ही आठ प्रांतीय परिषद में यह प्रस्ताव पारित करवाया कि 'भारत सरकार अधिनियम 1935 किसी भी रूप में भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है भारत की पराधीनता को कायम रखता है इसलिए यह परिषद इस अधिनियम को वापस लिए जाने और स्वतंत्र भारत के लोगों द्वारा संविधान बनाये जाने के लिए वयस्कों द्वारा चुनी गयी संविधान सभा के गठन की मांग करती है।'

भारत के राज्य
और रियासतें यह समझ नहीं पा रहे थे
कि भारतीय संघ का हिस्सा बनकर क्या उनकी स्थिति
बेहतर होगी ? रियासतें सरकार से और ज्यादा रियायतें मांग रही थीं।
जनवरी 1939 में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने अंतिम रूप से
अधिमिलन परिपत्र भेजा, लेकिन रियासतों के प्रमुख उससे भी संतुष्ट नहीं
हुए। इसके दूसरी तरफ वर्ष 1937 के चुनावों के परिणाम देखकर
राज्यों/रियासतों के लोग भी नागरिक अधिकारों और जनतांत्रिक
व्यवस्थाओं की स्थापना की मांग करने लगे।

वर्ष 1940 आते–आते यह स्पष्ट हो गया था कि ब्रिटिश राज का अंत होने वाला है। एक तरफ अखिल भारतीय मुस्लिम लीग लगातार द्वि राष्ट्र के सिद्धांत को आगे बढ़ा रही थी। दूसरी ओर राजे–रजवाड़े भी अपने वजूद की स्वतंत्रता की संभावना तलाश रहे थे। दूसरी तरह से कहें तो उन्हें लगने लगा था कि अब राजतंत्र का भी अंत होने वाला है। लेकिन अब तक की राजनीति, और विशेषकर 1935 का अधिनियम, उन्हें एक महत्वपूर्ण पक्ष बना चुके थे। लगभग 600 राज्यों–रियासतों में तत्कालीन भारत की 28 प्रतिशत आबादी रहती थी और इन राज्यों का विस्तार भारत की 40 प्रतिशत भूमि तक फैला हुआ था।

कैबिनेट मिशन में भारत के राज्यों और रियासतों को यह भरोसा दिलाया जाता रहा कि स्वतंत्र भारत में शामिल होने या न होने का निर्णय रियासतें और राजा–महाराजा खुद लेंगे। यदि वे स्वतंत्र रहना चाहते हैं, तो वे ऐसा निर्णय भी ले सकते हैं और अपनी राज्य व्यवस्था बना सकते हैं। रियासतों का यह विश्वास बढ़ता गया कि भारत की स्वतंत्रता के साथ वे भी स्वतंत्र हो सकते हैं। इस विश्वास ने अखंड भारत के निर्माण के लक्ष्य को और ज्यादा कठिन बना दिया।

रियासतें और आज़ादी का आंदोलन

ब्रिटिश शासन ने अधिकांश रियासतों के साथ जो संधियां की थीं उनके मुताबिक रियासतों के प्रमुख/राजा अपने राज्य का भीतरी प्रशासन चलाने के लिए स्वतंत्र थे, लेकिन सच यह था कि सुरक्षा और उत्तराधिकारी चयन के मामले में वे ब्रिटिश सरकार के अधीन थे।

रियासतें : बड़े राष्ट्रवादी आंदोलन

खिलाफत और असहयोग आंदोलन जैसे राष्ट्रवादी आंदोलनों के दौर में रियासतों (खासकर मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, इंदौर, जामनगर, काठियावाड़ आदि) के लोगों ने संगठन बनाकर आंदोलन शुरू किए। महात्मा गांधी रियासतों के लोगों को रचनात्मक काम, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत से जोड़ने का काम करते थे, लेकिन वर्ष 1937–38 तक महात्मा गांधी ने भी रियासतों की व्यवस्था में कोई दखल नहीं दिया। राजकोट सत्याग्रह की असफलता के बाद उन्होंने अपनी नीति बदली। 15 जुलाई 1939 को उन्होंने 'हरिजन' समाचार पत्र में लिखा कि रियासतों को अपने लोगों को जिम्मेदार शासन व्यवस्था स्थापित करने के लिए जनमत बनाने की स्वतंत्रता देना चाहिए।

फरवरी 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में रियासतों में स्वतंत्रता के संघर्ष और आंदोलनों को सहयोग देने का प्रस्ताव पारित किया गया, लेकिन इसके पहले वर्ष 1929 के लाहौर अधिवेशन में भी इस पर मत बना था क्योंकि बिना रियासतों को जोड़े 'पूर्ण स्वराज' हासिल करना संभव नहीं था।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 में भारत को एक महासंघ के रूप में स्थापित करने का प्रावधान किया गया। इसके अनुच्छेद 6(1) में उल्लेख किया गया कि 'कोई भी राज्य-रियासत भारतीय महासंघ में तभी शामिल माना जाएगा, जब ब्रिटेन के महामहिम सम्राट परिग्रहण संधि (इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेसन) पर हस्ताक्षर कर देंगे। इसके मुताबिक़ रियासत के राजा या प्रमुख, ब्रिटिश सम्राट की सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों और सम्राट की भूमिकाओं को स्वीकार करते हैं।'

रियासतों में इतनी ताकत नहीं थी कि वे इस व्यवस्था का विरोध कर पातीं, लेकिन राजा-महाराजा तय नहीं कर पा रहे थे कि भारतीय महासंघ में रहना लाभदायक है या बाहर रहना? बहरहाल, 11 सितम्बर 1939 को लॉर्ड लिनलिथगो ने घोषणा की कि 'वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों से विवश होकर हमारे पास महासंघ के निर्माण की प्रक्रिया को रोकने के अलावा कोई और विकल्प नहीं है।' इस तरह वर्ष 1935 का अधिनियम पूर्ण रूप में लागू नहीं हो पाया।

दूसरा विश्व युद्ध और अधूरी आजादी का प्रस्ताव

दूसरे विश्व युद्ध में भारत के राजनीतिक दलों और प्रांतीय सरकारों ने निर्णय लिया कि पहले विश्व युद्ध की तरह इस बार भारत के सैनिक ब्रिटेन की तरफ से युद्ध नहीं लड़ेंगे। इस निर्णय ने ब्रिटेन को कठिन परिस्थितियों में धकेल दिया क्योंकि ब्रिटिश भारत के सहयोग के बिना उसकी स्थिति युद्ध में उतनी मज़बूत नहीं थी। कांग्रेस चाहती थी कि ब्रिटिश सम्राट की सरकार भारत की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा करे, तब स्वतंत्र भारत के लोग युद्ध में अपनी भूमिका पर

निर्णय लेंगे। परिस्थितियों के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने आधी-अधूरी स्वतंत्रता के प्रस्ताव देने शुरू किए। ब्रिटेन चाहता था कि भारत स्वतंत्र होकर भी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (कॉमनवेल्थ) का हिस्सा बने।

दूसरे विश्व युद्ध की कठिन परिस्थितियों में 8 अगस्त 1940 को तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने प्रस्ताव (इसे अगस्त प्रस्ताव के रूप में जाना जाता है) दिया था कि 'यदि भारत ब्रिटिश अधिराज्य (डोमिनियन) के रूप में स्वतंत्रता के लिए तैयार है, ब्रिटिश सम्राट और ब्रिटिश संसद के उद्देश्यों को अपनाना स्वीकार करता है, तो ब्रिटिश सम्राट की सरकार गवर्नर जनरल की परिषद में भारतीयों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए तैयार है। ब्रिटिश सरकार शांति और कल्याण के शासन की अपनी जिम्मेदारियां किसी ऐसी सरकार को नहीं सौंप सकती है, जिसे देश के व्यापक और ताकतवर तत्व स्वीकार नहीं करते हैं।' यानी पूर्ण स्वतंत्रता का विकल्प नहीं दिया जा रहा था और यह साबित करने की कोशिश की जा रही थी कि भारत के राजनीतिक दल और व्यवस्था भारत को संभालने में सक्षम नहीं हैं।

29 मार्च 1942 को वार कैबिनेट के सदस्य स्टेफर्ड क्रिप्स ने एक प्रस्ताव जारी किया। प्रस्ताव में कहा गया था कि युद्ध विराम होते ही नया संविधान बनाने के लिए चुने हुए निकाय का गठन कर दिया जाएगा। यदि कोई प्रांत नया संविधान स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है और वर्तमान संवैधानिक स्वरूप बरक़रार रखना चाहता है और नये संविधान के तहत नहीं आना चाहते हैं तो ब्रिटिश सम्राट की सरकार इस बात के लिए भी तैयार रहेगी कि नया संविधान उन प्रांतों को भारतीय संघ जैसी ही हैसियत प्रदान करे। इसके साथ ही भारतीय रियासतों को संविधान सभा के लिए अपने प्रतिनिधि नियुक्त करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा। दो अप्रैल 1942 को कांग्रेस कार्यसमिति ने बेहद सजगता और ठोस तर्कों के साथ क्रिप्स प्रस्ताव को खारिज कर दिया।

पूर्ण स्वतंत्रता की मांग और रियासतों का प्रश्न

कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता की मांग कर रही थी, लेकिन इस प्रस्ताव में रियासतों को स्वतंत्र रहने का विकल्प देकर स्वतंत्रता को भी टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया था।

> कांग्रेस ने कहा कि 'भारतीय रियासतों-राज्यों में रहने वाले नौ करोड़ लोगों को एक वस्तु के रूप में उपभोग के लिए उनके राजाओं के रहमोकरम पर छोड़ दिया गया है। यह प्रस्ताव लोकतंत्र और आत्मनिर्णय के अधिकार का निषेध करता है। संविधान सभा के लिए रियासतों के राजाओं को अपने प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार दिया गया है, इससे वहां के लोगों को अपनी बात उठाने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। ये राज्य कई मायनों में भारत की स्वतंत्रता के विकास में बाधा बनेंगे, ये ऐसे क्षेत्र होंगे जहां विदेशी ताकतें और विदेशी सशस्त्र सेनायें मौजूद रहेंगी। इससे न केवल राज्यों के लोगों की स्वतंत्रता ध्वस्त होगी, बल्कि शेष भारत की भी। यह प्रस्ताव संघ की शुरुआत में ही विभाजन और टकराव को प्रोत्साहित करेगा।'

लेबर पार्टी और सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया

इस बीच ब्रिटेन में लेबर पार्टी सत्ता में आ गयी और उसने भारत में संविधान निर्माण, अंतरिम सरकार के गठन और सत्ता के हस्तांतरण की प्रक्रिया को तेज करने की कोशिश की। इस पहल के अंतर्गत 16 मई 1946 को कैबिनेट मिशन योजना जारी की गयी। जिसमें संविधान निर्माण की प्रक्रिया और अंतरिम सरकार के गठन की विस्तृत योजना थी। इस योजना में कहा गया कि अब तक ब्रिटिश सम्राट की सरकार के साथ रियासतों/राज्यों के साथ सत्ता संधि आधारित रिश्ता था। ब्रिटिश भारत की स्वतंत्रता के बाद सम्राट और रियासतों के बीच का यह संधि आधारित संबंध न तो बनाये रखा जा सकता है, न ही नयी सरकार को हस्तांतरित किया जा सकता है। लेकिन रियासतों के प्रमुखों/राजाओं ने आश्वासन

दिया है कि वे भारत में हो रहे विकास में सहयोग करने के लिए तैयार हैं। यह कैसे होगा, यह उनके बीच समझौता वार्ताओं से तय करना होगा।

रियासतें : कैबिनेट मिशन योजना

योजना में कहा गया कि विदेश मामलों, रक्षा और संचार के विषय भारतीय संघ के अधीन होंगे। इसके साथ ही इन तीन क्षेत्रों की जिम्मेदारी निभाने के लिए जरूरी आर्थिक मामलों पर भी संघ का नियंत्रण होगा। इनके अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्र और शक्तियां प्रांतों के नियंत्रण में होंगी। एक तरह से भारत को तीन मंडलों में बांटा गया था – अ, ब और स। पूर्वी और पश्चिमी मंडल यानी ब और स मंडल में मुस्लिम बहुल प्रांत थे और अ मंडल हिन्दू बहुल था। लेकिन हर रियासत अपने आप में एक इकाई थी।

कहा गया कि
संविधान सभा के लिए ब्रिटिश भारत के
प्रांतों से 292 प्रतिनिधि चुनाव के माध्यम से चुने जायेंगे,
लेकिन रियासतों/राज्यों के लिए निर्धारित 93 प्रतिनिधि कैसे चुने
जायेंगे, यह संविधान सभा की समिति और रियासतों की समझौता
समिति के बीच बातचीत से तय करना होगा। चूंकि अभी रियासतों में
प्रांतीय सभाएं नहीं है और चुनाव नहीं होते हैं, इसलिए वहां 93
प्रतिनिधियों के चुनाव में समय लग सकता है। अत: संविधान
सभा में रियासतों की सहभागिता में
देरी हो सकती है।

इसी प्रक्रिया में 12 मई 1946 को कैबिनेट मिशन ने रियासतों/राज्यों के समूह (चांसलर ऑफ चैंबर ऑफ प्रिंसेस) को प्रस्तुत किया। इसमें कहा गया था कि सत्ता संधि के माध्यम से जो संबंध ब्रिटिश सम्राट की सरकार और रियासतों के बीच थे, वे भारत की संवैधानिक व्यवस्था बनने के साथ समाप्त हो जायेंगे।

रियासतों पर जो अधिकार इन संधियों से ब्रिटिश सरकार को मिले थे, वे अधिकार किसी भी सूरत में भारत सरकार को हस्तांतरित नहीं किये जायेंगे। यानी अब रियासतों को अपने पूरे अधिकार वापस मिल जायेंगे। और वे जिस तरह चाहें नयी व्यवस्था में ब्रिटिश भारत के साथ समझौता करें। इस तरह कैबिनेट मिशन ने सभी रियासतों/राजाओं को यह संदेश भी दिया कि संविधान बनाने की प्रक्रिया में वे शामिल हों, चाहे न हों, उन्हें आर्थिक और वित्तीय मामलों पर भारत की सरकार के साथ समझौता वार्ता करना चाहिए। बाद की सभी प्रक्रियाओं में यही कैबिनेट मिशन योजना रियासतों के विलय से संबंधित प्रक्रियाओं का आधार बनी।

रियासतें : भारत से जोड़ने की राजनीति

रियासतों के प्रतिनिधियों और रियासतों के नरेशों के मंडल से वार्ता के लिए संविधान सभा ने 21 दिसंबर 1946 को वार्ता समिति का गठन किया। इसमें मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, बी. पट्टाभि सीतारमैया, शंकर देव और एन. गोपालस्वामी आयंगर शामिल थे। संविधान सभा में यह बहस भी हुई कि इस सभा में दलितों और आदिवासियों के प्रतिनिधि भी होना चाहिए क्योंकि कई रियासतों में बहुत से दलित और आदिवासी हैं। लेकिन इस मांग को खारिज कर दिया गया क्योंकि संविधान सभा रियासतों से जुड़े मसले को बेहद संवेदनशील ढंग से सुलझाना चाहती थी। समिति को बड़ा बना कर या वार्ता में दलित-आदिवासियों सरीखे विषय लाने से मूल उद्देश्य प्रभावित हो सकता था। पंडित नेहरू ने कहा भी था कि 'यह समिति उन तमाम सवालों को हल करने के लिए नहीं है, जो रियासतों और हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में एक से हैं।' फ़रवरी-मार्च 1947 में संविधान सभा और रियासतों के प्रतिनिधियों के बीच सघन वार्ताएं हुईं।

रियासतों की कठोर शर्तें

140 रियासतों के नरेशों के मंडल ने कैबिनेट मिशन की योजना को आधार बना कर 29 जनवरी 1947 को प्रस्ताव पारित किया कि:

- संवैधानिक वार्तालाप में शामिल होने को उनका अंतिम निर्णय न माना जाए।
- रियासतें अंतिम निर्णय संविधान के अंतिम चित्र को देखकर लेंगी।
- रियासतें उन सभी विषयों और अधिकार को अपने पास रखेंगी, जो भारतीय संघ को नहीं सौंपे जायेंगे।

- ऐसे विषयों (रक्षा, संचार और विदेश मामले) को छोड़कर सभी मामलों में रियासतों को स्वायत्तता रहेगी।
- रियासतों ने जो भी अधिकार ब्रिटिश सम्राट की सरकार को दिए थे, वे सभी अधिकार और सर्वोच्चता रियासतों को वापस मिल जायेंगे।
- रियासतें अपना संविधान बनायेंगी।
- उनकी अपनी सीमा रेखा होगी और परंपरा के मुताबिक उत्तराधिकारी चुनने की व्यवस्था में भारतीय संघ कोई दखल नहीं देगा।

इस प्रस्ताव में उल्लेख था कि भारत के स्वतंत्र होते ही ब्रिटिश सम्राट की सरकार और रियासतों के बीच की संधि समाप्त हो जायेगी और इसके बाद रियासतों को भारत की सरकार के साथ संघीय व्यवस्था में शामिल होकर या कोई राजनीतिक व्यवस्था बनाना होगी।

रियासतें : प्रतिनिधित्व का गणित

कैबिनेट मिशन के सूत्र के मुताबिक हर 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि संविधान सभा से चुना जाना था। भारत की सभी रियासतों की कुल जनसंख्या लगभग 9.3 करोड़ थी, अत: उनके लिए 93 स्थान तय किए गये। परंतु कई रियासतों की जनसंख्या बहुत कम थी। मसलन दांता की जनसंख्या 31 हज़ार, बओनी की 25.2 हज़ार, लोहारु की 27.9 हज़ार, सैलाना की 40.2 हज़ार, खिलचीपुर की 48.6 हज़ार, वांकानेर की 55 हज़ार थी।

दस लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि को चुनने की स्थिति में हैदराबाद (1.63 करोड़), मैसूर (73.2 लाख) कश्मीर (40 लाख), ग्वालियर (40 लाख), बड़ोदा (28.5 लाख), ट्रावनकोर (60 लाख) समेत केवल 20 रियासतें ही थीं, जहां से 60 संविधान सभा प्रतिनिधि चुने जा रहे थे। ऐसी स्थिति में छोटी रियासतों को मिलाकर 33 समूह बनाये गये। यह काम संविधान सभा और रियासतों के नरेशों के मंडल द्वारा आपसी सहमति से किया गया।

नरेशों के मंडल और संविधान सभा के सचिवालय ने मिलकर यह सूत्र निकाल लिया कि कौन-कौन सी रियासतों (जिनकी जनसंख्या कम है) के समूह बना कर प्रतिनिधियों का चुनाव किया जा सकता है। तय किया गया कि 7.5 लाख या इससे अधिक की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुना जा सकता है। ऐसे में सिक्किम और कूच बिहार की रियासत को मिलाकर (जनसंख्या 7.6 लाख) एक पद दिया गया, त्रिपुरा, मणिपुर और खासी राज्य को एक पद दिया गया। 156 रियासतों को मिलाकर 2.8 करोड़ की जनसंख्या पर 29 पदों का निर्धारण किया गया।

भोपाल के नवाब की अध्यक्षता वाला नरेशों के मंडल (चैंबर ऑफ प्रिंसेस) में 109 रियासतों का प्रत्यक्ष और 125 रियासतों का अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व था। सात बड़ी रियासतें हैदराबाद, कश्मीर, बड़ौदा, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन और इंदौर इससे बाहर थीं, इन सात रियासतों को ही संविधान सभा में 38 स्थान मिलने थे। ऐसे में यह समझ से बाहर था कि नरेशों का मंडल सभी रियासतों का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता था?

रियासतों के प्रतिनिधित्व (93 स्थान) का समीकरण क्या होगा? इस विषय पर महत्वपूर्ण चर्चा हुई। संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार बी.एन. राऊ ने सुझाव दिया कि जनसंख्या आधारित प्रतिनिधित्व के संदर्भ में 93 में से 14 स्थान मुसलमानों को, 9 स्थान आदिवासियों को, 9 स्थान अनुसूचित जाति, 3 स्थान भारतीय ईसाइयों और 2 स्थान सिखों को मिलने चाहिए।

यह उल्लेखनय है कि संविधान सभा में शामिल होने के निर्णय पर रियासतों के बीच मतभिन्नता थी। बड़ौदा और कोचीन की रियासतें सीधे संविधान सभा की समिति से वार्ता कर रही थीं। 8 जनवरी 1947 को बड़ौदा रियासत के दीवान बी.एल. मित्तर ने संविधान सभा के महासचिव को पत्र लिखकर सूचित किया कि उनकी रियासत को संविधान सभा में 3 स्थान मिल रहे हैं, जिनमें से एक को नामांकन और दो को पंचायत प्रतिनिधियों के द्वारा चुनाव के जरिये भरा जाएगा। कोचीन के महाराजा ने 18 फ़रवरी 1947 को टेलीग्राम के माध्यम से संविधान सभा को सूचित किया कि उनके मंत्री पी. गोविंदा राज्य के प्रतिनिधित्व पर चर्चा करेंगे और आग्रह किया कि कोचीन को संविधान सभा में दो स्थान दिए जाएं। ये दोनों स्थान राज्य की विधान परिषद के सदस्यों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि से भरे जायेंगे।

> रियासतों के नरेशों की सभा के प्रमुख भोपाल के नवाब चाहते थे कि पहले यह तय हो कि रियासतों को क्या-क्या अधिकार मिलेंगे और इसके बाद ही उनके प्रतिनिधि संविधान सभा में भाग लें। जबकि पंडित जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि रियासतों को अपने प्रतिनिधि संविधान सभा की शुरुआत से ही भेजनी चाहिए।

रियासतों के नरेशों और मंत्रियों की बैठक में 30 मार्च 1947 को यह मुद्दा रखा गया कि संविधान सभा में सहभागिता पर क्या निर्णय लिया जाए? बीकानेर और पटियाला के राजप्रमुखों ने संविधान सभा में भाग लेने के विकल्प को महत्व दिया।

रियासतों के साथ हुई वार्ता की रिपोर्ट 28 अप्रैल 1947 को संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत की गयी। उसी दिन बड़ोदा, बीकानेर, कोचीन, जयपुर, जोधपुर, पटियाला, रीवा और उदयपुर रियासत के प्रतिनिधियों ने संविधान सभा में अपना स्थान ग्रहण किया। इसके बाद देश की अन्य रियासतों के प्रतिनिधि भी सभा में शामिल होने लगे। रियासतों के संविधान सभा में भाग लेने के निर्णय से

रियासतों के नरेशों की सभा (चेंबर ऑफ प्रिंसेस) का प्रभाव निस्तेज होता गया। इसके बाद 3 जून 1947 के माउंटबेटन प्लान, जिसके मुताबिक़ भारत को 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र किया जाना तय किया गया और इसके साथ ही भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण का भी निर्णय लिया गया। यह एक नई स्थिति थी, जिसने भारत की तत्कालीन सरकार और संविधान सभा के साथ ही रियासतों को भी जल्द ही निर्णय लेने के लिए प्रेरित किया। इसके बात स्थितियां और जटिल हुईं।

रियासतें : प्रतिनिधि का चुनाव

जहां तक प्रतिनिधि चयन का प्रश्न है तो बड़ौदा के महाराजा शुरू से ही स्पष्ट थे कि उनकी रियासत (जिसके संविधान सभा में 3 स्थान थे) संविधान सभा में शामिल होगी और इसीलिए सात फ़रवरी 1947 को ही उन्होंने बड़ौदा रियासत की तरफ से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों (50 सदस्यीय इलेक्टोरल कालेज के लिए हर 50 हज़ार जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि का चुनाव) में चुनाव की योजना प्रस्तुत की।

इस बीच नरेशों के मंडल ने सुझाव दिया कि कुछ प्रतिनिधि चुनाव के माध्यम से चुने जा सकते हैं और कुछ प्रतिनिधि नरेशों द्वारा मनोनीत हो सकते हैं।

संविधान सभा का परिपक्व रुख

पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में आठ और नौ फरवरी 1947 को नरेशों के मंडल और संविधान सभा की वार्ता समिति की बेहद अहम बैठकें हुईं। नरेशों के मंडल ने वार्ता को इस विषय पर ले जाने की कोशिश की कि वास्तव में रियासतों को कितनी स्वायत्तता मिलेगी और भारतीय संघ का विस्तार कहां तक होगा? वास्तव में वे 29 जनवरी 1947 के अपने ही प्रस्ताव को केंद्र बनाना चाहते थे। आठ फरवरी की शाम वार्ता टूटने की कगार पर पहुंच गयी। तब पंडित नेहरू ने स्पष्ट किया कि 'ये विषय संविधान सभा की वार्ता समिति नहीं बल्कि खुद संविधान सभा ही तय कर सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि नि:संदेह हमारी तरफ से यह रियासतों की इच्छा पर निर्भर है कि वे संविधान

सभा में शामिल योजना को स्वीकार करें या न करें! किसी पर भी कोई भी दबाव नहीं डाला जाएगा। संविधान सभा ने इस बात पर कोई निर्णय नहीं लिया है कि राजशाही व्यवस्था रहे या न रहे? संविधान सभा को इस शासन व्यवस्था के बने रहने से कोई आपत्ति नहीं है।'

एक और दो मार्च 1947 को दूसरी बार दोनों वार्ता समितियों की बैठक हुई। इन दोनों बैठकों के दौरान कूटनीतिक संवादों के जरिये रियासतों के मंडल को यह संदेश दे दिया गया था कि यदि वे संविधान सभा में शामिल होंगे तो उन्हें अधिकार मिलेंगे, यदि शामिल नहीं होंगे तो उन्हें विशेष अधिकार नहीं मिलेंगे।

संविधान सभा की वार्ता समिति ने टकराव और हिंसा की हर संभावना को समाप्त करने की कोशिश की। शुरू में वार्ता समिति ने यह भी मान लिया कि रियासतों में राजशाही जारी रह सकती है और रियासतों को ज्यादा अधिकार दिए जाएंगे। यह बेहद संजीदा और परिपक्व प्रक्रिया इसलिए मानी जाना चाहिए क्योंकि एक तरफ हिन्दू-मुस्लिम टकराव का माहौल और पाकिस्तान निर्माण की हलचल थी, तो दूसरी तरफ आज़ादी की तरफ बढ़ रही भारत की व्यवस्था रियासतों के साथ युद्ध के जाल में उलझना अदूरदर्शिता होती। आखिर में 28 अप्रैल 1947 को संविधान सभा में रियासतों के भारत से जुड़ाव का प्रस्ताव संविधान सभा में रख दिया गया। इसमें रियासतों के समूहों को अपने संविधान बनाने और राजशाही व्यवस्था बनाये रखने के अधिकार दिए गये।

संविधान सभा और रियासतों की वार्ता

प्रतिनिधित्व के प्रश्न को हल करने के लिए संविधान सभा और रियासतों की वार्ता समितियां बनीं और उन्होंने आपस में बातचीत की। इसकी रिपोर्ट 28 अप्रैल 1947 को पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में प्रस्तुत की जिसमें पांच बिंदु प्रमुख थे:

- रियासतों के संविधान सभा में शामिल होने की योजना पूर्णत: ऐच्छिक है। इसमें घटनाओं की बाध्यता के अतिरिक्त कोई और बाध्यता नहीं है। यदि संविधान सभा में शामिल होते हैं, तो उसके निर्णय के मानने की भी बाध्यता नहीं है।
- रियासतें राजतंत्रात्मक प्रणाली बनाये रख सकती हैं।
- प्रदेशों/रियासतों की सीमाएं पुनर्विभाजित तब तक नहीं की जायेंगी, जब तक कि उनसे जुड़े पक्षों के बीच सहमति न हो।
- जो विषय (संचार, रक्षा और विदेश मामले) भारतीय संघ (यूनियन) को दिए गये हैं, उनके अलावा सभी विषय रियासतों के पास रहेंगे।
- रियासतों को जितने प्रतिनिधि संविधान सभा में भेजने हैं, उनमें से कम से कम 50 प्रतिशत प्रतिनिधि विधान परिषद/सभा या निर्वाचक मंडल के द्वारा चुने जाएं, यानी सभी प्रतिनिधि नरेश/राजा खुद न चुनें।

आपसी सहमति से साथ आयीं रियासतें

संविधान सभा की समिति और रियासतों की आपसी सहमति के बाद रियासतें संविधान सभा में शामिल होने लगीं। युद्ध या कुटिलता के बजाय भारतीय राजनीतिज्ञ एक परिपक्व मूल्य आधारित प्रक्रिया से रियासतों को भारत से जोड़

रहे थे। डॉ. कैलाश नाथ काटजू ने पंडित नेहरू के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा था, 'मेरे विचार से राजाओं के लिए अपनी तथाकथित शक्ति पर निर्भर रहने के बजाय, अपनी जनता के प्रेम और विश्वास पर निर्भर रहना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। यदि वे उस पर निर्भर रहें तो वे बने रह सकते हैं, अन्यथा इनमें से अधिकांश रियासतें लुप्त हो जायेंगी।'

जब चार नवम्बर 1948 को संविधान के प्रारूप पर बहस शुरू हुई, तब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कहा कि संविधान के प्रारूप की आलोचना इसलिए हो रही है क्योंकि इसमें केंद्र सरकार और प्रांतों के बीच वैधानिक संबंध की व्यवस्था है, और रियासतों के साथ केंद्र के संबंध की भिन्न व्यवस्था है। रियासतें संघ-सूची में दिए हुए विषयों की पूरी तालिका को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। वह समवर्ती सूची को मानने के लिए भी बाध्य नहीं हैं। वे अपनी संविधान सभा बना कर खुद अपना संविधान भी बना सकती हैं। यहां तक कि इस मसौदे में उन्हें अपनी सेना रखने की अनुमति भी दी गयी है। मैं इस प्रबंध को बड़ा ही हानिकारक और विपरीतगामी मानता हूं, जो भारत की एकता को छिन्न-भिन्न कर सकता है और केंद्र सरकार को उलट सकता है। भारत में 15 अगस्त 1947 को लगभग 600 रियासतें थीं, लेकिन एकीकरण की प्रक्रिया में इनके अपने समूह बनने से यह संख्या केवल 20-30 रह गयी है। जो रियासतें रह गयी हैं, मैं उनसे अपील करता हूं कि कि वे भारतीय प्रांतों के स्तर पर आ जाएं और उन्हीं की तरह भारतीय संघ का पूर्णत: अंग बन जाएं। मुझे विश्वास है कि अपना संविधान पारित करने से पहले ही हम प्रांतों और रियासतों के बीच के अंतर को दूर कर देंगे।'

रियासतें : शंकाएं और प्रिवी पर्स (निजी थैली) की व्यवस्था

नरेशों को शंका थी कि कांग्रेस के ज्यादातर नेता समाजवादी विचार के हैं, इसलिए पार्टी उनकी शासन व्यवस्था को समाप्त कर देगी, उनकी संपत्तियों का अधिग्रहण कर लिया जाएगा और उनके अधिकारों को समाप्त कर दिया जाएगा। यदि वे भारतीय संघ के पक्ष में चले जायेंगे, तो उनके राजस्व कमाने के रास्ते भी बंद हो जायेंगे। सरदार पटेल ने नरेशों को विश्वास दिलाया कि उनसे कुछ भी नहीं छीना जाएगा।

जहां तक उनकी आय में कमी का प्रश्न है, इसे नरेशों के लिए 'शाही निजी थैली' (प्रिवी पर्स) की व्यवस्था से सुलझा दिया जाएगा।

माना जाता है कि समाजवादी विचार के नेता, यहां तक कि पं. नेहरू भी 'शाही निजी थैली' के प्रावधान के पक्ष में नहीं थे, लेकिन सरदार पटेल ने इन व्यवस्थाओं को संविधान में शामिल करवाने का वायदा किया था।

नरेशों के साथ बातचीत की प्रक्रिया में सरदार पटेल ने सबसे ज्यादा वी.पी. मेनन को अपने साथ रखा। मेनन को ही नरेशों और राजाओं से वार्ता करने के लिए भेजा जाता था।

रियासतें : जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद

जून से 15 अगस्त 1947 के बीच जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद को छोड़कर 565 रियासतों में से 562 ने परिग्रहण की संधि पर हस्ताक्षर करके भारतीय संघ से संबंध स्थापित कर लिए थे। इन तीनों रियासतों की ओर से आनाकानी का सिलसिला जारी था। इनमें से कोई पाकिस्तान में मिलना चाहती थी तो किसी की मंशा स्वतंत्र रहने की थी।

जूनागढ़ में 80 प्रतिशत आबादी हिन्दू होने के बाद भी, जूनागढ़ के नवाब महाबत खान रसूलखानजी के दीवान सर शाहनवाज़ भुट्टो की कोशिश थी कि यह रियासत पाकिस्तान का हिस्सा बन जाए लेकिन ऐसा संभव हो नहीं सका। भारत की अंतरिम सरकार ने दबाव बनाया कि फैसला जनमत संग्रह से हो। 20 फरवरी 1948 को जूनागढ़ में जनमत संग्रह हुआ। 2.021 लाख पंजीकृत मतदाताओं में से 1.91 लाख ने मतदान किया। इनमें से केवल 91 मतदाताओं ने पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में मत दिया था, शेष सभी ने जूनागढ़ को भारत में मिलाने के विकल्प को चुना था।

महाराजा हरिसिंह कश्मीर को स्वतंत्र रखना चाहते थे। पाकिस्तान ने कबीलाई और सैन्य दबाव से कश्मीर पर नियंत्रण की कोशिश की। उस स्थिति में भारत ने कश्मीर की सहायता की और परिग्रहण की संधि भी।

2.12 लाख वर्ग किलोमीटर और 1.6 करोड़ की जनसंख्या के साथ हैदराबाद भारत की सबसे बड़ी रियासत थी। हैदराबाद के निजाम का ब्रिटिश सरकार के साथ हमेशा विशेष संबंध रहा। सरदार पटेल का मानना था कि हैदराबाद निजाम

का झुकाव पाकिस्तान की तरफ है, लेकिन तब किसी तरह की सैन्य कार्यवाही नहीं किए जाने की नीति थी। जब संधियों से बात नहीं बनी, तब सितम्बर 1948 में सरदार पटेल ने मंत्रिमंडल से हैदराबाद के मसले के हल के लिए सैन्य कार्यवाही की अनुमति ली। 13 से 18 सितम्बर 1948 के बीच हुई कार्यवाही में आजाद भारत ने हैदराबाद की सेना को शिकस्त दी लेकिन सरदार पटेल ने परिपक्व राजनीति अपनाते हुए निजाम को ही हैदराबाद का राजप्रमुख बनवाया। बाद में हैदराबाद का भारत में विलय हुआ। ये सभी कदम पंडित नेहरू के नेतृत्व वाली सरकार की सहमति से उठाए गये थे।

12 अक्टूबर 1949 को यानी संविधान पारित होने के लगभग डेढ़ महीने पहले गृह और राज्य मामलों के मंत्री सरदार पटेल ने रियासतों/राज्यों के संबंध में अपनी आखिरी रिपोर्ट संविधान सभा में प्रस्तुत की। उन्होंने कहा,

> “भारत सरकार की रियासतों के एकीकरण और लोकतंत्रात्मक बनाने की नीति के कारण दिसम्बर 1947 के बाद रियासतों के संघीकरण का काम जोरों से हुआ। इसके कारण राज्यों तक संघीय ढांचे का विस्तार हुआ और संघीय वित्तीय व्यवस्था बनी। जब रियासतें भारत की संविधान सभा में शामिल हुई थीं, तब यह समझा गया था कि उनका संविधान, भारत के संविधान का अंग नहीं होगा और इनका भारतीय संघों में प्रवेश किसी संवैधानिक व्यवस्था से होगा। इन विषयों पर रियासतों को प्रांतों से भिन्न आधार पर रखा गया था। लेकिन जो संशोधन अब रखे जा रहे हैं, उनमें उस रक्तहीन क्रांति के परिणाम निहित हैं, जिसने इतने कम समय में रियासतों की आंतरिक तथा बाह्य व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया है।”

दरअसल पहले भारत के प्रांतों और रियासतों के लिए अलग-अलग व्यवस्थाएं बनी थीं। देसी रियासतों से बातचीत के बाद व्यवस्था में चार बातें शामिल हुईं:

- केंद्र सरकार रियासतों में उन्हीं कृत्यों को करे और शक्तियों का प्रयोग करे, जो वह प्रांतों में करती है।
- प्रांतों के समान ही रियासतों में केंद्र सरकार अपने निजी कार्यपालक संगठनों के द्वारा कार्य करे।
- अंशदान के आधार में एकरूपता और समानता हो।
- करों, सेवाओं पर व्यय, अनुदान, आर्थिक सहायता, वित्तीय और प्रौद्योगिकी सहायता के मामले में भी प्रांतों और रियासतों में परस्पर समानता का व्यवहार हो।

निजी थैली पर व्यय

इस संबंध में सरदार पटेल ने कहा था, 'शासकों और उनके परिजनों पर लगभग 20 करोड़ रुपये का व्यय किया जाता है। सभी अन्य संधियों और करारों में निजी थैली को नियत करने की व्यवस्था है। हम जो व्यवस्था कर रहे हैं उसके अनुसार इस थैली के लिए केवल साढ़े चार करोड़ रुपये का व्यय होगा, यानी मौजूदा व्यय के एक चौथाई से भी कम। इसके दूसरी तरफ रियासतों के एकीकरण के कारण शासकों के प्राप्त हुए धन से संघ को इससे कहीं ज्यादा आर्थिक लाभ हुआ है। मैं संविधान सभा को यह विश्वास कराना चाहता हूं कि रियासतों में से एकतंत्रवाद सदैव के लिए चला गया है। शासक सम्मानपूर्वक छोड़कर चले गये हैं। अब यह जनता का कर्तव्य है कि वह इस कमी को पूरा करे और नयी व्यवस्था का पूर्ण लाभ उठाये।'

रियासतें : भौगोलिक स्वरूप

- भारत सरकार के श्वेत पत्र के मुताबिक़ विभाजन के पूर्व भारत का क्षेत्रफल 15,81,410 वर्ग मील था। जिसमें से 7,15,964 वर्ग मील यानी 45 प्रतिशत भू भाग रियासतों के पास था। विभाजन के बाद भारत का कुल भू भाग (क्षेत्रफल) 12,20,099 वर्ग मील था, जिसमें से 5,85,888 वर्ग मील भू भाग (48 प्रतिशत) रियासतों के आधिपत्य में था।
- भारतीय रियासतों में कश्मीर का क्षेत्रफल 84,471 वर्ग मील और हैदराबाद का क्षेत्रफल 82,313 वर्ग मील था। ये दोनों भारत की सबसे बड़ी रियासतें थीं।
- काठियावाड़ में चिरोड़ा का क्षेत्रफल 0.72 वर्गमील, गांधोल का क्षेत्रफल 0.52 वर्गमील जूनापाडर का क्षेत्रफल मात्र 0.31 वर्गमील था।
- भारत में 15 ऐसे राज्य थे, जिनका क्षेत्रफल 10,000 वर्ग मील से ज्यादा था। 67 ऐसी रियासतें थीं, जिनका क्षेत्रफल 1,000 से 10,000 वर्गमील के बीच था। जबकि 202 ऐसे राज्य/रियासतें/जागीरें थीं, जिनका क्षेत्रफल 10 वर्ग मील से भी कम था।

रियासतें : किसकी कितनी आबादी?

वर्ष 1941 की जनगणना के अनुसार अविभाजित भारत की कुल जनसंख्या 38.90 करोड़ थी। इनमें से 9.32 करोड़ (24 प्रतिशत) लोग रियासतों में रहते थे। भारत का विभाजन होने के बाद भारत की जनसंख्या 31.89 करोड़ थी। इनमें से 8.88 करोड़ लोग (27 प्रतिशत) रियासतों में रहते थे। यानी विभाजन के बाद भारत की रियासतों में रहने वाली जनसंख्या का अनुपात बढ़ गया।

विभाजन से पहले 16 ऐसी रियासतें थीं, जिनकी जनसंख्या दस लाख से ज्यादा थी। 4 रियासतें ऐसीं थीं, जिनकी जनसंख्या 7.5 लाख से 10 लाख के बीच थी। इन 20 रियासतों को जनसंख्या के आधार पर भारत की संविधान सभा में 60 स्थान दिए गये थे। 13 रियासतें ऐसी थीं, जिनकी जनसंख्या 5 से 7.5 लाख के

बीच थी। 140 रियासतों की जनसंख्या 25 हज़ार से 5 लाख के बीच थी। इन्हीं 140 रियासतों को 12 प्रतिनिधियों के माध्यम से राज प्रमुखों/रियासतों की सभा (चैंबर ऑफ प्रिंसेस) में प्रतिनिधित्व मिला था।

रियासतें : शासकों के पदनाम

- भारत की रियासतों में राज प्रमुखों/शासकों के पदों को अलग-अलग पहचान मिली हुई थी। हैदराबाद के राजप्रमुख को निजाम और भोपाल के राजप्रमुख को '**नवाब**' कहा जाता था।
- जम्मू और कश्मीर, मैसूर, बरोदा, ग्वालियर, रीवा, पन्ना, इंदौर पटना, बस्तर, बीकानेर, कोटा, कूच बेहार, त्रिपुरा आदि के राज प्रमुखों को '**महाराजा**' के नाम से पुकारा जाता था।
- कलात (बलूचिस्तान) के राजप्रमुख के पद का नाम '**खान**' था।
- सैलाना, राजगढ़, नरसिंहगढ़, झाबुआ, बड़वानी, सांगली आदि रियासतों के राजप्रमुख के पद का नाम '**राजा**' था।
- सावंतवाड़ी के राजप्रमुख के पद का नाम '**सर देसाई**' था, जबकि भोर के राजप्रमुख को पंत सचिव कहा जाता था।
- औंध, मिराज, जामखंडी, कुरुन्दवाड़ के राजप्रमुख के पद का नाम '**चीफ**' था। जबकि रामदुर्ग के राजप्रमुख के पद का नाम '**भावे**' था। खैरपुर के राजप्रमुख के पद का नाम '**मेरे**' था। बूंदी के राजप्रमुख के पद का नाम '**महाराव राजा**' था।
- डूंगरपुर के राजप्रमुख के पद का नाम '**महारावत**' था, जबकि झालावाड़ के राजप्रमुख को '**महाराज राणा**' कह कर संबोधित किया जाता था।
- पालिताना, धरोल, लिंबड़ीन, राजकोट, वाधवान के शासक को '**ठाकोर साहेब**' कहा जाता था।

रियासतें : निजी थैली (प्रिवी पर्स) की कहानी

स्वतंत्रता के समय रियासतों से हुई बातचीत के आधार पर भारत के संविधान में रियासतों के शासकों, नरेशों और राजप्रमुखों के लिए अपनी शक्तियां छोड़ने के एवज़ में भारत सरकार के कोष से निजी थैली यानी अपना राजसी जीवन जीने के लिए एक निश्चित राशि हर साल देने का प्रावधान किया गया। भारत सरकार के राज्यों के मंत्रालय द्वारा जारी श्वेत पत्र में शामिल संलग्नक (पृष्ठ 388–395) के अनुसार 284 शासकों के लिए निजी थैली के रूप में सालाना 5.65 करोड़ रुपये की राशि की व्यवस्था रखी गयी। इसमें काटोडिया के शासक के लिए 192 रुपये से लेकर मैसूर के राजा के लिए 26 लाख रुपये, ग्वालियर के महाराज के लिए 25 लाख रुपये, भोपाल के नवाब के लिए 11 लाख रुपये, हैदराबाद के शासक के लिए 50 लाख रुपये की निजी थैली का प्रावधान किया गया।

वास्तव में राजाओं, नरेशों और राजप्रमुखों की एक बड़ी चिंता थी कि अगर उनकी रियासत भारतीय संघ में शामिल हो गयी, तो उनकी निजी सत्ता और प्रभाव समाप्त हो जाएगा। उनकी समस्त संपत्तियां और आय के स्रोत उनसे छीन लिए जायेंगे। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने रियासतों को भारत से जोड़ने के लिए ही निजी थैली की प्रावधान किया था। उनकी मंशा सामंजस्य के साथ रियासतों का विलय करने की थी, न कि हिंसा और सैन्य कार्यवाही के जरिये।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने 12 अक्टूबर 1949 को संविधान सभा में कहा, 'भारतीय स्वाधीनता अधिनियम ने राज्यों को उन सब रिश्तों/भारों से मुक्त कर दिया जो अंग्रेजी ताज के साथ थे। अंग्रेजी अधिकारियों ने उन्हें यह बताना शुरू कर दिया था कि ब्रिटिश साम्राज्य की रियासत पर सर्वोच्च सत्ता समाप्त होने पर पारिभाषिक और वैध रूप से राज्य स्वाधीन हो जायेंगे। इस परिस्थिति में

विघटनात्मक शक्तियों के प्रबल होने का वास्तविक भय था क्योंकि कुछ शासकों की इच्छा थी कि वे अपने आपको स्वाधीन घोषित करे दें। आरंभ में भारत सरकार ने रियासतों के शासकों को प्रतिरक्षा, वैदेशिक कार्य और संचार, इन तीन विषयों को उसे (केंद्र सरकार को) देने के लिए निमंत्रित किया। उन्हें आश्वासन दिया गया कि इन तीन विषयों के अतिरिक्त अन्य रूप में स्थिति यथावत रहेगी। यदि शासक बाहर रहना पसंद करते तो वे उन भारी असैनिक सूचियों के अनुसार पहले की तरह धनराशि लेते रहते और वे रियासत के राजस्व का अनिर्बंधित रूप से उपयोग करते रहते। इन परिस्थितियों में अपनी शासन शक्तियों को छोड़ने के लिए जैसे के तैसे रूप में जो कुछ हम न्यूनतम दे सकते थे, वह यह था कि उनको निजी थैलियों की प्रत्याभूति (गारंटी) दी जाए और युक्तियुक्त तथा परिभाषित आधार पर उनको कुछ विशेषधिकार दिए जाएं। निजी थैलियों का निर्णय शासकों द्वारा अपनी शक्तियों को छोड़ने तथा पृथक राज्य (स्वतंत्र रियासत के रूप में रहने की मंशा) के रूप में राज्यों के विघटन के कारण किया गया है।'

इसी सोच के अंतर्गत संविधान सभा ने भारत सरकार के व्यय पर रियासतों के राजाओं और नरेशों के लिए निजी थैली (प्रिवी पर्स) प्रदान करने की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद 291 में की थी।

रियासतों को भारत से जोड़ने के लिए हुए समझौतों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था नरेशों–राजप्रमुखों के लिए भारत सरकार के कोष से राज्य के राजस्व के निश्चित प्रतिशत। प्रथम लाख रुपये राजस्व पर 15 प्रतिशत, अगले चार लाख रुपये पर 10 प्रतिशत, पांच लाख रुपये से अधिक पर साढ़े सात प्रतिशत और अधिकतम 10 लाख रुपये का हिसाब लगाया गया। लेकिन इसके बाद जयपुर, ग्वालियर, हैदराबाद, मैसूर सरीखी कुछ रियासतों के लिए अधिक राशि का भी प्रावधान किया गया।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने 12 अक्टूबर 1949 को संविधान सभा को सूचित किया कि अब तक जो वचन दिए गये हैं, उनके अनुसार निजी थैली की कुल वार्षिक रकम लगभग साढ़े चार करोड़ रुपये होती है। उन्होंने कहा कि इससे शासकों पर अभी होने वाला व्यय घट कर एक चौथाई रह जाएगा।

निजी थैली क्या और कितनी बड़ी?

निजी थैली के अंतर्गत दी जाने वाली राशि का उपयोग रियासतों के शासकों द्वारा अपने निजी खर्चों, आवास, विवाह और अन्य समारोहों और निजी स्टाफ के लिए किया जाना था। हर रियासत के साथ ऐसा समझौता हुआ, जिसमें निजी थैली की राशि और उससे संबंधित शर्तों का उल्लेख था। उदाहरण के लिए 21 मार्च 1949 को बड़ौदा रियासत का भारत में विलीनीकरण समझौता हुआ। जिसमें कहा गया था कि 'आज की तारीख से बड़ौदा के महाराजा अधिराज्य सरकार में शामिल होते हैं और एक मई 1949 की तारीख से राज्य के अभी प्राधिकार, नियंत्रण क्षेत्र और शासन से संबंधित समस्त शक्तियां अधिराज्य सरकार को स्थानांतरित करते हैं। बड़ौदा महाराजा अपने निजी अधिकार, गरिमा, शीर्षक और विशेष अधिकारों को पहले जैसे ही अपनाते रहेंगे। उन्हें राज्य के

राजस्व में से सालाना चार किश्तों में 26.50 लाख रुपये, जो कि कर-मुक्त होंगे, निजी थैली के रूप में मिलेंगे, जिसका उपयोग वे अपनी निजी-पारिवारिक व्ययों, सचिवालय और निजी कर्मचारियों, आवास, विवाह और अन्य समारोहों के लिए कर सकेंगे। यह राशि न तो कम की जायेगी, न ही इसमें वृद्धि की जायेगी। रियासत के महाराजा राज्य की परिसंपत्तियों से अलग अपनी सभी निजी संपत्तियों पर अधिकार रखते रहेंगे। महाराजा बड़ौदा पारंपरिक पद्धति से अपना उत्तराधिकारी चुन सकेंगे। भारत सरकार बड़ौदा रियासत के शासक के रूप में किये गये किसी भी कृत्य के सन्दर्भ में बड़ौदा महाराज के खिलाफ कोई भी न्यायिक कार्यवाही नहीं करेगी।'

पहले यह अनुमान लगाया गया था कि निजी थैली पर लगभग साढ़े चार करोड़ रुपये खर्च होंगे, लेकिन जब हैदराबाद और मैसूर से समझौता हुआ, तब निजी थैली की राशि साढ़े चार करोड़ रुपये से बढ़कर लगभग 5.8 करोड़ रुपये हो गयी। बड़ौदा (26.50 लाख रुपये), ट्रावनकोर (18 लाख रुपये), ग्वालियर (25 लाख रुपये), इंदौर (15 लाख रुपये), जयपुर (18 लाख रुपये), बीकानेर (17 लाख रुपये), जोधपुर (17.50 लाख रुपये), हैदराबाद (50 लाख रुपये) और मैसूर (26 लाख रुपये), ये ऐसी नौ रियासतें थीं, जिनके साथ दस लाख रुपये की तय राशि से ज्यादा की निजी थैली दी गयी थी। इन राज्यों के साथ यह अनुबंध किया गया कि इन्हें वर्तमान थैली रियासत के केवल वर्तमान शासक/राजप्रमुख के लिए ही है। उनके उत्तराधिकारी के लिए भारत सरकार द्वारा अलग से प्रावधान किये जायेंगे।

'निजी थैली' की व्यवस्था को स्थायी व्यवस्था नहीं माना गया था। वास्तव में यह व्यवस्था लोकतंत्र, समता और सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक न्याय के उन मूल्यों के विपरीत भी थी, जिनका उल्लेख संविधान की उद्देशिका में किया गया था। यह व्यवस्था मूलभूत अधिकारों में दर्ज अनुच्छेद 117, जिसमें उपाधियों का अंत किया गया था, के अनुरूप भी नहीं थी क्योंकि भारत सरकार रियासत के शासकों को अपनी उपाधि बरकरार रखने का अधिकार भी दे रही थी।

निजी थैली और शासकों के विशेषाधिकारों की समाप्ति

'निजी थैली' के प्रावधान को हटाने की पहल वर्ष 1970 में शुरू हुई। जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं, तब उन्होंने 2 सितम्बर 1970 को लोकसभा में संविधान में चौबीसें संशोधन का विधेयक प्रस्तुत किया। इसमें संविधान के अनुच्छेद 291, 362 और 366 (22) को हटाने यानी रियासतों के नरेशों-राज प्रमुखों को निजी थैली प्रदान किये जाने की भारत सरकार की बाध्यता को समाप्त करने का प्रस्ताव था। लोकसभा में यह विधेयक पारित हो गया। इसके बाद पांच सितम्बर को यही विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया, लेकिन राज्य सभा में इसे दो तिहाई समर्थन नहीं मिला और संविधान में यह संशोधन प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। इसके कुछ ही घंटों बाद भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 366 (22) के अंतर्गत अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए रियासतों के शासकों को दी गयी मान्यता को समाप्त कर दिया। इस अनुच्छेद में राष्टपति को ही निजी थैली के निर्धारण के उद्देश्य से शासकों को मान्यता देने का अधिकार दिया गया था।

> महाराजाधिराज माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बहादुर (यही नाम याचिका में दर्ज है) ने सर्वोच्च न्यायालय में इसके विरुद्ध याचिका दर्ज की। मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायतुल्लाह के नेतृत्व वाली 11 सदस्यीय संविधान पीठ ने भी माना कि संविधान के प्रावधान के मुताबिक़ राजाओं-शासकों को निजी थैली प्रदान करना भारत सरकार की जिम्मेदारी है और यह व्यवस्था समाप्त करने का उसका निर्णय असंवैधानिक है।

लेकिन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का मानना था कि यह व्यवस्था सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है। इसीलिए उन्होंने इसी आधार पर आम चुनावों में जाने का निर्णय लिया और 'गरीबी हटाओ' के नारे के साथ चुनाव लड़कर लोकसभा में 352 स्थान हासिल किए। चूंकि अब उनके पास ज्यादा बहुमत था, इसलिए उन्होंने 31

जुलाई 1971 को ही संसद में छब्बीसवां संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत कर दिया। इसके उद्देश्य वक्तव्य में कहा गया था कि 'वर्तमान कार्य और सामाजिक उद्देश्यों के अंतर्गत निजी थैली (प्रिवी पर्स) और नरेशों/शासकों के विशेषाधिकार की अवधारणा समतामूलक सामाजिक उद्देश्यों से असंगत है। अत: सरकार ने भारत के पूर्व रियासत शासकों के विशेषाधिकारों और निजी थैली की व्यवस्था को समाप्त करने का निर्णय लिया है।'

संवैधानिक व्यवस्था में राजशाही के अवशेषों को समाप्त करने के लिए राजनैतिक प्रतिबद्धता के साथ ही उस राजनैतिक प्रावधान को समाप्त किया गया, जो भारत के एकीकरण के लिए स्वीकार किया गया था।

"संवैधानिक व्यवस्था में राजशाही के अवशेषों को समाप्त करने के लिए राजनैतिक प्रतिबद्धता के साथ ही उस राजनैतिक प्रावधान को समाप्त किया गया, जो भारत के एकीकरण के लिए स्वीकार किया गया था।"

संविधान संवाद पुस्तिका शृंखला

- संविधान और हम
- भारतीय संविधान की विकास गाथा
- जीवन में संविधान
- भारत का संविधान – महत्वपूर्ण तथ्य और तर्क
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि
- संवैधानिक व्यवस्था : एक परिचय
- संविधान की रचना प्रक्रिया
- संविधान सभा में स्वतंत्रता का घोषणा पत्र
- संविधान की उद्देशिका से परिचय
- भारतीय संविधान
  मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व
- भारतीय संविधान और रियासतें
- संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता
- भारत के संविधान के रोचक किस्से
- भारत का राष्ट्रीय ध्वज : तिरंगे की कहानी
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और भारतीय संविधान
- गांधी का संविधान
- संविधान और आदिवासी
- स्वाधीनता, स्वतंत्रता और संविधान
- संविधान और समाजवाद तथा आर्थिक समानता
- संविधान और सांप्रदायिकता
- संविधान और चुनाव प्रणाली
- संविधान और न्यायपालिका
- संविधान और अल्पसंख्यक
- इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र के होने का मतलब
- बंधुता : अर्थ और व्यवहार

पुस्तकें पाने के लिए संपर्क करें –
vikassamvadprakashan@gmail.com / 0755 - 4252789

'संविधान संवाद' शृंखला क्यों?

जब हम किसी विषय के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन जब हम उसके बारे में जानना शुरू करते हैं तो फिर हर पहलू को टटोलने, जानने और समझने की आवश्यकता और ललक होती है।

भारतीय संविधान से जुड़ी तमाम जानकारियों को जानने की उत्कंठा के कारण ही 'विकास संवाद' ने 'संविधान संवाद शृंखला' आरंभ की है। इसका उद्देश्य संविधान की विकास गाथा को जानना, उसके उद्देश्य को समझना तथा तय लक्ष्यों की प्राप्ति में हम नागरिकों के कर्तव्यों के बोध की पहल करना है।

यह संवैधानिक मूल्यों के आत्मबोध से उन्हें आत्मसात करने तक की यात्रा है।

विकास संवाद

Azim Premji Foundation